IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

शंकराचार्य की स्मार्त परंपरा और तुलसी का काव्य

डॉ. अंकिता त्रिपाठी, डॉ. मणि रंजन राय
PhD
Department Of Hindi
BHU, Varanasi, India

Abstract: **सारांश**

भारतीय सांस्कृतिक चेतना की विशिष्टता यह रही है कि यहाँ दर्शन और काव्य परस्पर विरोधी न होकर परस्पर-परिपूरक परंपराएँ हैं। दर्शन जहाँ तत्त्व-मीमांसा और ब्रह्मविद्या के स्तर पर जीवन और जगत के शाश्वत प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करता है, वहीं काव्य उन गूढ़ प्रतिपादनों को रस, अनुभूति और लोक-व्यवहार के धरातल पर मूर्त करता है। इसी अंतःसम्बद्ध परंपरा में तुलसीदास और स्मार्त संप्रदाय का संगम विशेषतया महत्वपूर्ण है।

स्मार्त परंपरा, जो आदि शंकराचार्य की अद्वैत-प्रतिभा का अवतरण है, केवल वेदान्तीय अद्वैत का प्रतिपादन नहीं करती, वरन् पंचदेवोपासना, पुराण-प्रदत्त भक्ति और धर्म के लौकिक आचार के समन्वय से भारतीय धर्म-चेतना को एक समग्र स्वरूप प्रदान करती है। तुलसीदास के काव्य में विशेषतः रामचरितमानस, इस परंपरा की दार्शनिक गहनता को जनभाषा और भावानुभूति के माध्यम से सुलभ बनाता है। उनके काव्य में अद्वैत का निर्गुण ब्रह्म, भक्ति का सगुण साकार ईश्वर और धर्म का सामाजिक अनुशासन एक ही ताने-बाने में प्रत्यक्ष होता है। अतः तुलसीदास का काव्य केवल रामकथा का आख्यान नहीं, अपितु शंकराचार्य प्रदत्त स्मार्त परंपरा का जन-प्रतीति रूप है; जिसमें तत्त्व और भाव, ज्ञान और भक्ति, निर्गुण और सगुण का अद्वैत समन्वय निहित है।

Index Terms - **मुख्य शब्द**: अद्वैत वेदान्त, स्मार्त परंपरा, पंचदेवोपासना, तुलसीदास, रामचरितमानस, निर्गुण–सगुण समन्वय, भक्ति-दर्शन, लोकाभिव्यक्ति, धर्म-चेतना, तत्त्वमीमांसा।

I. Introduction

शंकराचार्य के स्मार्त परंपरा की रूपरेखा

स्मार्त परंपरा वस्तुतः भारतीय धार्मिक चेतना का वह उद्भव है, जिसमें अद्वैत वेदांत की परमातीत सत्यदृष्टि और पुराण-प्रवाहित भक्ति-संवेदना का संगम अभिव्यक्त होता है। शंकराचार्य के अद्वैत परंपरा की अधिष्ठानभूमि पर प्रतिष्ठित यह परंपरा स्मृतिग्रंथों एवं पुराणों के आचरण-सिद्धांतों को आत्मसात कर, दार्शनिक अमूर्तता को सामाजिक और साधक-जीवन के व्यवहारिक धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। इस परंपरा का मूलाधार पंचदेवोपासना है, जिसमें शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणपति का समन्वित आराधन एकात्म धर्मानुभूति का प्रतीक है। यहाँ उपासना का बहुरूपात्मक वैविध्य किसी संप्रदाय-विशेष की संकीर्णता में सीमित न रहकर अद्वैत के सार्वभौमिक सत्य का व्यावहारिक प्रतिपादन करता है। अतः स्मार्त परंपरा को उस दार्शनिक-सांस्कृतिक प्रवाह के रूप में देखा जा सकता है, जो निर्गुण–सगुण, ज्ञान–भक्ति तथा आचार–विचार के द्वंद्व को परस्पर समन्वित कर जीवन के व्यापक आध्यात्मिक आयाम का उद्घाटन करता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में- "इस तीर्थ व्रत-उपवास प्रधान, जाति-वर्ण विश्वासी, सर्वदेवोपासक मत को एक शब्द में 'स्मार्त मत' कहते हैं। स्मार्त मत अर्थात् स्मृति-निर्दिष्ट धर्म-व्यवस्था को पालन करने में कल्याण मानने वाला मत। इस प्रकार का मत कोई नयी बात नहीं। महाभारत काल में भी गृहस्थों का जो वर्णन है उससे कुछ इसी प्रकार के गृहस्थों का पता चलता है। फिर भी इन दिनों का प्रचलित विश्वास यह है कि स्मार्त मत की पुनः प्रतिष्ठा शंकराचार्य ने की थी। उन्होंने ही पंचदेवोपासना की पद्धति चलायी।"1

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का अभिप्राय है कि स्मार्त परंपरा का मूलाधार वैदिक धर्म ही रहा, किंतु आदि शंकराचार्य ने पंचदेवोपासना की पद्धति का सूत्रपात कर इस परंपरा को एक नूतन दार्शनिक-आध्यात्मिक आयाम प्रदान किया। इसी हेतु प्रायः विद्वत्समाज स्मार्त धर्म के सुसंविधि रूप उद्भव का श्रेय शंकराचार्य की अधिष्ठान प्रतिभा को समर्पित करता है।

शंकराचार्य की स्मार्त परंपरा और तुलसी के काव्य का संबंध

श्री शंकराचार्य ने अपने अद्वैत वेदान्त में आत्मा और ब्रह्म की एकता को सिद्ध किया। उनकी परंपरा का मुख्य आधार अद्वैतवाद है, जिसके अनुसार आत्मा ही शाश्वत सत्य है और संसार मिथ्या। मुक्ति का मार्ग केवल तत्त्वज्ञान से संभव है। उन्होंने प्रस्थानत्रयी— ब्रह्मसूत्र, उपनिषद और भगवद्गीता पर भाष्य लिखे। ब्रह्मसूत्र भाष्य (शारीरक भाष्य) में उन्होंने आत्मा-परमात्मा की एकता को अस्वीकार करने वाले मतों का खंडन किया। गीता पर उनके भाष्य ने स्पष्ट किया कि मोक्ष केवल ज्ञान से प्राप्त हो सकता है। शंकराचार्य ने बारह उपनिषदों पर भाष्य लिखे, जिनमें बृहदारण्यक उपनिषद का भाष्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपरोक्षानुभूति, आत्मबोध, उपदेशसाहस्री, विवेकचूड़ामणि जैसे अनेक प्रकरण ग्रंथ भी रचे, जिनमें साधनभूत गुणों और अद्वैत सिद्धांतों का सरल विवेचन है।

उन्होंने चार मठों की स्थापना कर अद्वैत वेदान्त का प्रचार पूरे भारत में किया। आचार्य शंकर महान् अद्वैतवादी होते हुए भी मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, व्रत-तपस्या और पंचमहायज्ञों जैसे अनुष्ठानों को मान्यता देते थे। उन्होंने भारत में पंचदेवोपासना (शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश और सूर्य) को विधिपूर्वक लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। इसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक ऐक्य और सम्प्रदायों के बीच सद्भाव स्थापित करना था। शंकराचार्य किसी वैष्णव को शैव या शैव को वैष्णव बनाने के पक्षधर नहीं थे; वे प्रत्येक अनुयायी को अपने इष्टदेव की उपासना के साथ अन्य देवताओं का सम्मान करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। पंचदेवोपासना सम्प्रदायवाद से मुक्त है। इसमें अपने इष्टदेव को केंद्र में रखते हुए अन्य देवताओं की भी पूजा का विधान है। आचार्य शंकर ने सैद्धांतिक अद्वैतवाद और गहन भक्ति को एक साथ प्रस्तुत किया, जिससे हिन्दू समाज में धार्मिक एकता, मानव कल्याण और सामंजस्य की भावना का प्रसार हुआ। श्री जयराम मिश्र ने कहा "आचार्य पूर्ण अद्वैतवादी थे, परन्तु साथ ही साथ उनमें भक्ति-भावना की प्रगाढ़ता और अनन्यता भी कूट-कूट कर भरी हुई थी। भक्ति संबंधी रचनाओं में वे रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य आदि वैष्णवाचार्यों से भी आगे बढ़ जाते हैं।"2

वे भक्ति मार्ग में द्वैतभाव को आवश्यक मानते थे अर्थात् साधक और साध्य के बीच भेदभाव के बिना साधना संभव नहीं। ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य 3 में उन्होंने ब्रह्म को दो रूपों में वर्णित किया है – एक, जो उपासना हेतु नाम और रूप से विशिष्ट है (सगुण) और दूसरा, जो सभी उपाधियों से मुक्त है (निर्गुण)।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।4

देहधारी के लिए अव्यक्त को समझ पाना कठिन है।

आचार्य शंकर के अनुसार साधना में प्रारंभ में द्वैत "मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो" भाव होता है। जैसे ही अद्वैतभाव की प्राप्ति होती है, साधक और साध्य एक हो जाते हैं और ब्रह्म के एकत्व का ज्ञान होने पर द्वैतबोध पुनः उत्पन्न नहीं होता। यही ब्रह्मभाव मोक्ष की प्राप्ति का आधार है। दार्शनिक दृष्टि से अद्वैतवादी होने के बावजूद आचार्य शंकर ईश्वर के परम भक्त थे और पंचदेवों के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा थी। उनके भक्तिमूलक हृदय का प्रकाश उनके 69 स्तोत्रों में देखा जा सकता है: गणेश 4, शिव 18, देवी 19, विष्णु 10, युगल देवता 3, नदी-तीर्थ 5 और सामान्य स्तोत्र 4। "अद्वैत वेदान्त के अनुसार निर्गुण ब्रह्म ही परम तत्व है परन्तु व्यवहार के लिए सगुण ब्रह्म की उपासना नितांत उपयोगी है। इसी लिए शंकर ने अनेक वैदिक देवताओं की स्तुतियां लिखी हैं।"5 आचार्य शंकर ईश्वर और ब्रह्म में कोई भेद नहीं मानते और अन्य भक्ति सम्प्रदायों की भाँति अवतारवाद का भी समर्थन करते हैं। वे कहते हैं कि जब-जब धर्म अधर्म से लुप्त होता है, भगवान विष्णु वसुदेव के द्वारा देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण (बलराम सहित) के रूप में प्रकट होकर जगत की रक्षा करते हैं।

शंकराचार्य के अनुसार ईश्वर सर्वव्यापी हैं। अपनी हरि-स्तुति में उन्होंने भगवान विष्णु के विराट स्वरूप का वर्णन करते हुए भक्त को पूर्ण समर्पण और भगवत्कृपा की आवश्यकता बताया है। भक्त को अपने दोष और अज्ञान समझकर ईश्वर की शरण में पूरी श्रद्धा के साथ जाना चाहिए।

योऽयं देहे चेष्टयिताऽन्तःकरणस्थः
सूर्ये चासौ तापयिता सोऽस्म्यहमेव ।
इत्यात्मैक्योपासनया यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥6

तुलसीदास ने अपने काव्य में रामभक्ति को केंद्र बनाया। वे राम को केवल अवतारी पुरुष या ऐतिहासिक नायक नहीं मानते, बल्कि उन्हें ब्रह्म का सगुण-साकार स्वरूप मानते हैं। रामचरितमानस में तुलसी लिखते हैं –

"सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥7

यहाँ स्पष्ट है कि तुलसीदास के लिए सगुण राम और निर्गुण ब्रह्म में कोई अंतर नहीं है। यह दृष्टिकोण स्मार्त परंपरा की ही छाया है, जहाँ अद्वैत के निर्गुण ब्रह्म और भक्ति के सगुण देवता को एक ही सत्य के रूप में स्वीकारा गया। तुलसीदास का काव्य केवल भक्ति का गान नहीं, बल्कि भारतीय दार्शनिक परंपरा का लोकप्रिय रूप है। स्मार्त परंपरा जहाँ अद्वैत और पंचदेवोपासना का समन्वय करती है, वहीं तुलसीदास उसी भाव को रामभक्ति और लोकभाषा के माध्यम से प्रकट करते हैं। शंकराचार्य ने परंपरा को बौद्धिक धरातल पर प्रस्तुत किया, तुलसी ने उसे भावनात्मक और सांस्कृतिक धरातल पर उतारा। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि तुलसी का काव्य स्मार्त परंपरा का लोकभाषा में साकार और जीवंत रूप है।

तुलसीदास के समय विभिन्न सम्प्रदायों – शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, सिद्ध और योगियों – के बीच तीव्र मतभेद थे, जिससे साधारण जनता धर्म के मूल स्वरूप से दूर होती जा रही थी। ऐसी स्थिति में तुलसीदास ने अपूर्व समन्वय स्थापित किया। उन्होंने सभी देवी-देवताओं को आदर देकर, ग्रामदेवता और कुलदेवता तक को मान्यता प्रदान की। विशेषतः शैव और वैष्णवों के बीच की खाई को पाटते हुए तुलसी ने स्पष्ट किया कि शिव और विष्णु भिन्न नहीं, एक ही परमात्मा के स्वरूप हैं। जब राम और शिव में भेद नहीं, तो उनके उपासकों में भी भेदभाव का स्थान नहीं हो सकता। इस प्रकार तुलसीदास ने अपने काव्य में सर्वदेव-समन्वय की महान परंपरा को सशक्त रूप दिया।

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥ 8

जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥ 9

तुलसी ने भी स्मार्त के अनुरूप स्त्री का निरूपण किया है। पतिव्रता स्त्री को महान और पति - सेवा को ही परम धर्म बताया।
"एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा।10
वास्तव में माता-पिता और भाई-बंधु सभी संबंध केवल एक सीमा तक सुख प्रदान करते हैं, किंतु पति मोक्षदाता होने के नाते असीम सुख देने वाला होता है। अतः वह स्त्री अधम है जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती। परम धर्म, जिसे स्मार्त धर्म में सार्ववर्णिक धर्म कहा गया है, सभी वर्गों और आश्रमवासियों के लिए समान रूप से पालन योग्य है, जबकि वर्णाश्रम धर्म विशेष वर्ग के लिए निर्धारित है। रामचरितमानस में राम-रावण युद्ध के प्रसंग में धर्मरथ वर्णन में परम धर्म का संकलित और स्पष्ट निरूपण मिलता है।

स्मार्त धर्म की सामाजिक व्यवस्था का आधार वर्णाश्रम व्यवस्था है। सभी वर्गों और आश्रमवासियों के लिए निर्धारित कर्तव्यों का पालन न करने से व्यक्ति शोचनीय माना जाता है। अयोध्याकाण्ड में 'करि नृप क्रिया संग पुरबासी' प्रकरण में तुलसीदास ने भरत के पितृशोक के संदर्भ में मुनिवशिष्ठ के माध्यम से वर्णाश्रम धर्म का विवेचन किया है।

तुलसीदास ने यहाँ दो पक्ष स्पष्ट किए हैं—एक शोचनीय और दूसरा अशोचनीय। शोचनीय में वे उन व्यक्तियों को रखते हैं जो धर्म का पालन नहीं करते, जबकि अशोचनीय (नृप) को अलग किया गया है। इस प्रकरण में चारों वर्ण, आश्रम और स्त्रियों के कर्तव्यों का भी उल्लेख है। तुलसीदास ने कुल बारह प्रकार के शोचनीय लोगों का विवरण दिया है- वेदहीन ब्राह्मण । जो राजा नीति का जानकार नहीं हो। जो वैश्य शिव भक्त न हो और अतिथि की सेवा न करे। शूद्र जो तीनों वर्णों की सेवा न करे और हस्तकला और भवन निर्माण आदि से धनार्जन न करे। पुनः उस स्त्री का सोच करना जो पति को छलने वाली, कुटिल, कलहप्रिय और स्वेच्छा चारिणी है। उस ब्रह्मचारी का सोच करना चाहिए, जो अपने ब्रह्मचर्य व्रत को छोड़ देता है और गुरु की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता| उस गृहस्थ का सोच करना चाहिए, जो मोहवश कर्म मार्ग का त्याग कर देता है। उस संन्यासी का सोच करना चाहिए, जो दुनिया के प्रपंच में फँसा हुआ और ज्ञान-वैराग्य से हीन है| वानप्रस्थ वही सोच करने योग्य है, जिसको तपस्या छोड़कर भोग अच्छे लगते हैं। सोच उसका करना चाहिए जो चुगलखोर है, बिना ही कारण क्रोध करने वाला है तथा माता, पिता, गुरु एवं भाई-बंधुओं के साथ विरोध रखने वाला है

स्मार्त धर्म में विभिन्न पातकों, उनके प्रायश्चित और दुष्कृत्यों से उत्पन्न विभिन्न योनियों का उल्लेख मिलता है। कई स्मृतियाँ और पुराण, जैसे स्कन्दपुराण, मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति, पापों और उपपातकों का विस्तृत वर्णन करती हैं।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वांगनागमः |
महन्ति पातकान्यहुः संसर्गश्चपि तैः सह।। 11

यदि इन पापों का प्रायश्चित न किया जाए तो उनके निन्दित प्रभाव अगले जन्म में शरीर पर दिखाई देते हैं। मनुस्मृति में विभिन्न पापों के कारण उत्पन्न रोगों का भी उल्लेख किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में भी विभिन्न पापों और उनके परिणामस्वरूप उत्पन्न नीच योनियों का वर्णन किया गया है।

जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महिसुर पुर जारें॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥12

अर्थात् जो पाप माता-पिता और पुत्र के मारने से होते हैं और जो गोशाला और ब्राह्मणों के नगर जलाने से होते हैं, जो पाप स्त्री और बालक की हत्या करने से होते हैं और जो मित्र और राजा को जहर देने से होते हैं| पुत्र माता-पिता का ऋणी और माता-पिता पुत्र के पालन-पोषण के कर्ता हैं; उनका हनन करना महापाप है। जो व्यक्ति ईश्वर की भक्ति छोड़कर भूत-प्रेत, वेदविरोध, लोभ, क्रोध या स्त्री-धन हरण जैसी कृतियाँ करता है, वह परमार्थ मार्ग से दूर होता है।

स्मार्त धर्म में संस्कारों का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव जीवन में षोडश संस्कारों का पालन आवश्यक माना गया है, जिसमें विवाह संस्कार विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके बाद ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है और सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन का निर्माण करता है। स्मार्त ग्रन्थों में आठ प्रकार के विवाह वर्णित हैं: ब्राह्मण, देव, आर्ष, प्रजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच।

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।13

तुलसीदास ने अपने काव्य में कई संस्कारों का उल्लेख किया है, लेकिन विवाह संस्कार का वर्णन विशेष रूप से विस्तृत है। रामचरितमानस में राम-जानकी विवाह और पार्वती मंगल में शिव-पार्वती विवाह प्रमुख रूप से वर्णित हैं। राम-जानकी विवाह का विवरण कवितावली, गीतावली और स्वतंत्र ग्रंथ जानकी मंगल में भी मिलता है।

तुलसीदास ने विवाह की वैदिक और सामान्य रीति का जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया है—विवाह की तैयारियाँ, लग्न पत्रिका, बारात प्रस्थान, स्वागत, पाणिग्रहण, सिन्दूरदान, भाँवरे, दहेज, कोहबर की परंपरा, बारात-विदाई और पुत्री की शिक्षा एवं विदाई। शिव-पार्वती विवाह पूरी तरह से वैदिक रीति के अनुसार संपन्न होता है।

"कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥

वर और कन्या सुंदर भाँवरें दे रहे हैं। सब लोग आदरपूर्वक (उन्हें देखकर) नेत्रों का परम लाभ ले रहे हैं। मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं हो सकता, जो कुछ उपमा कहूँ वही थोड़ी होगी।"14 इस प्रकार स्मार्त परंपरा और तुलसीकाव्य दोनों ही भारतीय धर्मदर्शन की उस अखंड चेतना के संवाहक हैं, जिसमें निर्गुण और सगुण, तत्त्वज्ञान और भक्ति, आचार और अनुष्ठान, दर्शन और काव्य—सभी परस्पर विरोधी न रहकर समन्वित रूप में प्रतिफलित होते हैं।

आदि शंकराचार्य ने जहाँ अद्वैत वेदांत की गूढ़ तात्त्विकता को पंचदेवोपासना के माध्यम से जनमानस में प्रतिष्ठित किया, वहीं तुलसीदास ने उसी अद्वैत-सिद्धांत को रामभक्ति के माधुर्य और लोकभाषा की सरलता के साथ साकार रूप दिया। एक ओर शंकराचार्य का स्मार्त धर्म दार्शनिक गाम्भीर्य और आचारशास्त्रीय व्यवस्था का प्रतिनिधि है, तो दूसरी ओर तुलसी का काव्य उसी परंपरा का भावात्मक–सांस्कृतिक रूपांतरण है।

निष्कर्ष

तुलसीदास और स्मार्त परंपरा का संबंध गहरे स्तर पर देखा जा सकता है। तुलसी निर्गुण ब्रह्म को नकारते नहीं, बल्कि उसे सगुण राम में रूपांतरित कर देते हैं। स्मार्त परंपरा की तरह तुलसी भी वेद, उपनिषद, पुराण और लोकभक्ति का एकीकृत रूप प्रस्तुत करते हैं। जहाँ स्मार्त परंपरा में पाँच देवों की उपासना है, वहाँ तुलसी ने उसमें से राम को केंद्र में रखकर भक्ति को सरल और सर्वमान्य बना दिया। शंकराचार्य का अद्वैत दार्शनिक और बौद्धिक स्तर पर था, तुलसी ने उसे अवधी और ब्रज जैसी लोकभाषाओं में सरल बना दिया। उन्होंने स्मार्त परंपरा की गूढ़ दार्शनिक परंपरा को जनसाधारण की भाषा और भावनाओं से जोड़ दिया। शंकराचार्य के अद्वैत को समझना सामान्य जन के लिए कठिन था, किंतु तुलसी ने उसी अद्वैत को भक्ति और कथा के माध्यम से सहज और सुलभ बना दिया। उनके काव्य में धर्म, नीति, आचार और परंपरा सबका समन्वय है। उनका रामचरितमानस केवल रामकथा नहीं, बल्कि एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें वेदांत, स्मार्त परंपरा और भक्ति का अद्वितीय संगम है।

REFERENCES

1. मध्यकालीन धर्मसाधना आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण 1970, पृष्ठ. 60
2. आदि शंकराचार्य (जीवन और दर्शन), श्री जयराम मिश्र, प्र० लोकभारती प्रकाशन, 15 ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाराबाद।, प्रथम संस्करण 1984, पृष्ठ. 318
3. ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्यम्, विद्या भवन संस्कृत ग्रंथमाला -124, सं• एवं व्याख्या स्वामी श्री हनुमानदास जी षट्शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी - 221 001, पुनर्मुद्रित, मेंस 1977, 1-1-11
4. श्रीमद्भागवत गीता, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 12, श्लोक 5.
5. भारतीय धर्म और दर्शन, आ. बलदेव उपाध्याय, प्र.चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1977, पृष्ठ 341
6. श्री शांकर ग्रंथावलि: स्तोत्राणि (भाग एक), हरिस्तुति-31, संपादक. श्री वी. सदानंद, समता बुक्स, मद्रास संशोधित संस्करण, 1981.
7. रामचरितमानस, टीकाकार हनुमान पोद्दार, गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर, सत्तरवां संस्करण, 1988, बालकांड, शिव-पार्वती संवाद
8. रामचरितमानस, टीकाकार हनुमान पोद्दार, गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर, सत्तरवां संस्करण, 1988, 1-112-3.
9. रामचरितमानस, टीकाकार हनुमान पोद्दार, गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर, सत्तरवां संस्करण, 1988, 1-51-4.
10. रामचरितमानस, टीकाकार हनुमान पोद्दार, गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर, सत्तरवां संस्करण, 1988, 3-5-5
11. मनुस्मृति, सं. व अनु. पं. रामेश्वर भट्ट, प्र. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली-7, पुनर्मुद्रित संस्करण 1990, 11.54;55-56
12. https://share.google/7R0uZDLfib1iQr8o9
13. मनुस्मृति, सं. व अनु. पं. रामेश्वर भट्ट, प्र. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली-7, पुनर्मुद्रित संस्करण 1990, 3.2.
14. रामचरितमानस, टीकाकार हनुमान पोद्दार, गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर, सत्तरवां संस्करण, 1988, 1.325.1,4.